2

सुणिल्यो जीव सुजान...

सुणिल्यो जीव सुजान, सीख सुगुरु हित की कही।।
रुल्यौ अनन्ती बार, गति गति साता ना लही।।टेक।।
कोइक पुण्य संजोग, श्रावक कुल नर गति लही।
मिले देव निर्दोष, वाणी भी जिनकी कही।।१।।
सुणिल्यो जीव सुजान.....

चर्चा को परसंग (प्रसंग), अरु श्रद्धा में बैठिवो।
ऐसा अवसर फेरि, कोटि जनम नहिं भेंटवो।।२।।
सुणिल्यो जीव सुजान.....

झूठी आशा छोड़ि, तत्त्वारथ रुचि धारिल्यो।
या में कछु न विगार, आपो आप सुधारि ल्यो।।३।।
सुणिल्यो जीव सुजान....

तन को आतम मानि, भोग विषय कारज करो।
यौं ही करत अकाज, भव भव क्यों कूवे परो।।४।।
सुणिल्यो जीव सुजान.....

कोटि ग्रंथ को सार, जो भाई 'बुधजन' करो।
राग–द्वेष परिहार, याही भाव सों उद्धरो।।५।।
सुणिल्यो जीव सुजान।।

हे बुद्धिमान चेतन! सुनो। सुगुरू ने तुम्हारे हित की बात कही है। तुम अनंत बार संसार की गतियों में भ्रमण करके दुःखी हुये हो और तुम्हें कहीं भी शांति प्राप्त नहीं हुई।।टेक।।

कभी किसी पुण्य के संयोग से मनुष्य पर्याय, श्रावक कुल प्राप्त हुआ और महासौभाग्य से ऐसे सच्चे देव मिले, जिनकी वाणी भी निर्दोष है अर्थात् जिनागम के अनुसार है।।१।।

साथ ही आत्म चर्चा करने वाले लोगों की संगति भी प्राप्त हुई तथा स्वयं की श्रद्धा में भी यह तत्त्व उचित प्रतीत हुआ। अब ऐसा अवसर करोंड़ों जन्मों में भी फिर से प्राप्त नहीं होने वाला हैं।।२।।

हे चेतन! संसार प्राप्ति की इस झूठी आशा का त्याग करो, तत्त्व तथा उसके अर्थ को समझकर धारण करो । इसमें तुम्हारा कोई अहित नहीं होगा, तुम अपनी भूल से ही दुखी हो, उसे सुधारो।।३।।

हे ज्ञायक! तुम शरीरादिक परद्रव्यों को ही अपना मानकर विषय–भागों में लगे रहे, परंतु यह कार्य करने योग्य नहीं क्योंकि इससे संसार रूपी कुएँ में जन्म–मरण ही करते रहोगे, सुख प्राप्त नहीं कर पाओगे।।४।।

कविवर बुधजनजी कहते हैं कि हे भव्य! करोड़ों ग्रन्थों का सार यही है कि जो जीव राग–द्वेषादिक विभाव भावों का त्याग करेगा वही जीव इस संसार सागर को पार कर सकेगा ।।५।।